द्वारा

डॉ आशीष सिसोदिया

श्लिष्ट योगात्मक के भी दो वर्ग हैं - (अ) अन्तर्मुखी (ब) बहिर्मुखी

(अ) अन्तर्मुखी श्लिष्ट योगात्मक - इस वर्ग की भाषाओं में जोड़े हुए भाग अर्थ तत्त्व के बीच में बिल्कुल घुल-मिल जाते हैं। सेमेटिक या हेमेटिक कुल की भाषाएँ इस वर्ग में आती हैं। उदाहरण - अरबी भाषा में कातिब (किताब लिखने वाला) से बना है। किताब (जो लिखा गया है), कुतुब (बहुत सी किताबें)

इसके भी दो प्रकार हैं - (1) संयोगात्मक (2) वियोगात्मक

(1) संयोगात्मक - इसमें अलग से सहायक संबंध तत्त्व लगाने की आवश्यकता नहीं रहती है। अरबी भाषा इसका उदाहरण है।

(2) वियोगात्मक - इसमें सहायक संबंध तत्त्वों की आवश्यकता पड़ती है। हिब्रू भाषा इसका उदाहरण है।

(ब) बहिर्मुखी श्लिष्ट योगात्मक - इस प्रकार की भाषाओं में जोड़े हुए भाग प्रधानतः मूल भाग (अर्थ तत्त्व) के बाद आते हैं। संस्कृत व भारोपीय परिवार की भाषाएँ इसका उदाहरण हैं। इसके भी दो भेद हैं - (1) संयोगात्मक (2) वियोगात्मक

(1) संयोगात्मक - इसमें सहायक क्रिया तथा परसर्ग की आवश्यकता नहीं रहती। शब्द में ही संबंध तत्त्व लगा रहता है। उदाहरण - संस्कृत में सः पठति = वह पढ़ता है।

(2) वियोगात्मक - भारोपीय परिवार की अधिकतर भाषाएँ आधुनिक काल में वियोगात्मक हो गई हैं। बहुत पहले इसकी विभक्तियाँ घिसकर लुप्तप्रायः हो गईं, अतः अलग से शब्द लगाने की आवश्यकता पड़ने लगी और इसी आवश्यकता के कारण परसर्ग तथा सहायक क्रिया के रूप में शब्द रखे जाने लगे। उदाहरण - संस्कृत में ’पठति‘ शब्द हिन्दी में ’पढ़ता है‘ हो गया। यहाँ ’है‘ व ’पढ़ता‘ का अलग होना वियोगात्मक है।

 आज आकृतिमूलक वर्गीकरण का महत्त्व कम हो गया है, क्योंकि-

1. इसके आधार पर महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाल पाना संभव नहीं है।

2. श्लिष्ट और प्रश्लिष्ट में विभाजक रेखा खींच पाना कठिन है।

3. विश्व की सभी भाषाओं का अध्ययन अभी तक नहीं हो पाया है।

(2) अयोगात्मक - भाषाओं में प्रत्यय या उपसर्ग नाम की कोई वस्तु नहीं होती क्योंकि शब्दों में कुछ नहीं लगाया जाता अर्थात् शब्दों का रूप ज्यों का त्यों रहता है। उसका अपना स्वतंत्र महत्त्व रहता है और उसकी सत्ता में, वाक्य में प्रयुक्त होने पर भी, कोई हानि नहीं होती। इसीलिए इसका व्याकरणिक विभाजन नहीं होता, अतः व्याकरणिक कोटियों की कोई आवश्यकता नहीं होती। जैसे - संस्कृत भाषा के ’राम‘ शब्द को लेकर ’रामेण‘ बनाया गया या ’मैं‘ से ’

मुझे‘ बनाने के लिए कुछ जोड़ा या घटया गया है। अयोगात्मक भाषाओं में इस शब्द के लिए स्थान नहीं रहा अर्थात् ’वाक्य में शब्द के स्थान पर ही सब कुछ निर्भर करता है।‘ एक शब्द संज्ञा, सर्वनाम या विशेषण आदि सभी का कार्य करता है। यही कारण है कि इन भाषाओं को ’स्थान प्रधान भाषाओं‘ की संज्ञा भी दी जाती है। इसे एकाक्षर भी कहा जाता है। इसके उदाहरण के लिए विश्व में चीनी भाषा सर्वोत्तम है। इसके अतिरिक्त इसके वर्ग की अन्य भाषाएँ - बर्मी, स्यामी, तिब्बती आदि हैं। यथा - चीनी भाषा में ’न्गो त नि‘ का अर्थ है ’मैं मारता हूँ तुमको‘ लेकिन ’नि त न्गो‘ का अर्थ है ’तुम मारते हो मुझको‘। इसी प्रकार - ’तालेन‘ का अर्थ है बड़ा आदमी और ता लेन का अर्थ है - आदमी बड़ा है। यहाँ तक कि विभिन्न काल की क्रियाओं के रूप बनाने में भी शब्दों में परिवर्तन नहीं होता। यथा - त्सेन का अर्थ है चलना। इसका भूतकाल बनाने के लिए इसके आगे लिओन जिसका अर्थ समाप्त होता है, रखने से ’त्सेन लिओन‘ से ’चला‘ हो जाएगा।

उपर्युक्त दोनों वाक्यों में ’त्सेन‘ का रूप एक है, आगे दूसरा शब्द आने मात्र से रूप परिवर्तन हो गया। मूल शब्द में कोई रूप परिवर्तन नहीं हुआ और न कोई जोड़ना-घटना अपेक्षित हुआ है। ’साँप मेढ़क खाता है‘ और ’मेढ़क साँप खाता है‘ वाक्यों में पहले वाक्य में साँप कर्ता था तो दूसरे में मेढ़क। यह सब स्थान भेद के कारण हुआ है।

भोलानाथ तिवारी के शब्दों में ’’अयोगात्मक भाषाओं का अर्थ तत्त्व तथा संबंध तत्त्व में योग नहीं होता या तो संबंध तत्त्व की आवश्यकता ही नहीं होती। केवल स्थान क्रम से संबंध का पता चल जाता है या संबंध तत्त्व रहता भी है तो अर्थ तत्त्व से मिलता नहीं।‘‘ इस वर्ग की भाषाओं के मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

1. शब्द क्रम का महत्त्व इन भाषाओं में अधिक है।

2. इन भाषाओं का व्याकरण नहीं होता।

3. स्वर भेद में एक शब्द के अनेक भेद हो जाते हैं जो अनेक अलग-अलग अर्थ देते हैं।

4. इन भाषाओं में शब्दों की निष्पत्ति कुछ जोड़कर नहीं की जाती है अर्थात् प्रत्यय विभक्ति नहीं जोड़ी जाती है।

5. अपवाद स्वरूप कहीं-कहीं निपात आदि से वाक्य या पद रचना की जाती है। उदाहरण - चीनी में जिन = मनुष्य, तो = कई; कई मनुष्यों = ’तोजिन‘ लिखा जाएगा।